National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2026; 1(65): 97-100
© 2026 NJHSR
www.sanskritarticle.com

मनोज कुमार शुक्ल
शोधछात्र, संस्कृत विभाग,
अतर्रा पी.जी. कॉलेज अतर्रा, बाँदा उ.प्र.
(सम्बद्ध- बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी)

शोध-निर्देशक
तरुण कुमार शर्मा
असि. प्रोफेसर संस्कृत विभाग,
अतर्रा पी.जी. कॉलेज अतर्रा, बाँदा उ.प्र.
(सम्बद्ध- बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी)

Correspondence:
मनोज कुमार शुक्ल
शोधछात्र, संस्कृत विभाग,
अतर्रा पी.जी. कॉलेज अतर्रा, बाँदा उ.प्र.
(सम्बद्ध- बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी)

प्राचीन भारतीय ज्ञान परम्परा में नारी महिमा

मनोज कुमार शुक्ल, तरुण कुमार शर्मा

भारतीय संस्कृति और ज्ञान परम्परा में नारी का स्थान सर्वोपरि एवं बहु प्रशंसनीय है। भारतीय दार्शनिक एवं शास्त्रविदों भारतीय संस्कृति और ज्ञान परम्परा में नारी का स्थान सर्वोपरि एवं बहु प्रशंसनीय है। भारतीय दार्शनिक एवं शास्त्रविदों सृष्टि की उत्पत्ति, संवर्धन में नारी शक्ति को मातृत्त्व और ज्ञान का प्रतीक माना है। नारी शक्ति प्राचीन समय से ही पूर्व वैदिक काल से ही धीरे-धीरे उत्तरवैदिक काल आते-आते जीवनदायनी शक्ति के रूप में ही नही अपितु शिक्षा, दर्शन, साहित्य, कला, धर्म और सामाजिक जीवन की आधारशिला के रूप में सक्रिय सहभागिता प्रदान किया। ऋग्वेद एवं प्रमुख उपनिषदों में गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा जैसी विदुषियों का उल्लेख मिलता है।

मध्यकाल में भी स्त्रियों का ज्ञान, भक्ति के क्षेत्र भक्ति आन्दोलन में संत कवयित्री मीरा, ललद्यद, अक्का महादेवी आदि ने भक्ति के माध्यम से यह सिद्ध किया कि नारी केवल एक कुशल गृहिणी ही नहीं अपितु आध्यात्मिकता की संवाहिका भी है।

औपनिवेशिक युग में सामाजिक सुधार क्रान्ति में सावित्रीबाई फुले, पण्डिता रमाबाई तथा स्वतंत्रता संग्राम के समय सरोजिनी नायडू, पण्डिता विजयलक्ष्मी फिर अंग्रेजों के खिलाफ झांसी की रानी लक्ष्मीबाई आदि की महत्त्वपूर्ण योगदान था, जिसके बिना स्वतंत्र भारत का कल्पना सम्भव नहीं था।

अतः भारतीय ज्ञान परम्परा एवं संस्कृति में नारी महिमा अतुलनीय है। वैदिक साहित्य, उपनिषद्, स्मृति-ग्रन्थ, मध्यकालीन साहित्य एवं वर्तमान सामाजिक सांस्कृतिक चिन्तन का विश्लेषण किया जाएगा, क्योंकि इनके अध्ययन पूर्णतः पुष्ट प्रमाण स्वतः सिद्ध होता है कि भारतीय ज्ञान परम्परा के विभिन्न स्वरूपों में नारी की भूमिका किस प्रकार से महिमायुक्त एवं अपनी पुनः एक दैवीयशक्ति के रूप में स्थापित हो रही है।

मूल शब्द- सञ्जीवनी शक्ति, शिक्षा, स्वतंत्रता, विवाह संस्कार एवं अधिकार, स्त्री प्रतिष्ठा, निष्कर्ष

सञ्जीवनी शक्ति- 'नृ' मनुष्य शब्द से स्त्रीत्त्व विवक्षा में ङीन् प्रत्यय की प्राप्ति 'नृनरयोर्वृद्धिश्च' वार्तिक से! नारी पद निष्पन्न होता है।1 जिसका अर्थ हुआ- मानुषी शक्ति रूप नारी। व्युत्पत्तित: स्त्री शब्द का प्रयोग 'गर्भ धारण' (स्त्यायति गर्भोऽस्यामिति) के आधार पर सिद्ध होता है।

अतएव 'स्त्री' शब्द बहुव्यापक हुआ तथा 'नारी व्याप्य' व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध होने पर भी 'स्त्री' शब्द को 'नारी' का एक पर्याय स्वीकार किया जाता है जिसकी पुष्टि अमरसिंह कृत अमरकोश (2.6.2) में स्त्री के अनेक पर्याप शब्द संगृहीत हैं-

स्त्री योषिदबला योषा नारी सीमन्तिनी बधूः।
प्रतीप दर्शिनी वामा वनिता महिला तथा।।

नारी के विभिन्न समानार्थी शब्दों में अन्तर है, इनके सूक्ष्म अनुसन्धान से नारी जीवन के विभिन्न पहलुओं में अवतरित होती है।

'योषित्' एवं 'योषा' शब्दों से स्त्री में सेवा भाव की प्रधानता[2], 'वामा' एवं 'वनिता' से स्नेहभाव की मुखरता[3], 'प्रतीपदर्शिनी' से चाञ्चल्यपूर्ण आपाङ्कनिरीक्षण की मोहकता[4], 'वधू' से जब कोई कन्या

पिता उसके विवाह संस्कार के समय पतिगृह गमन की संज्ञा में परिणित होती है[5]। 'अबला' से (पुरुष वर्ग) की अपेक्षा में अल्पशारीरिक योग्यता[6] तथा एवं सीमन्तिनी एवं 'महिला' पदों से समाज में उसकी पूजनीयता[7] का स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है।

इस प्रकार स्त्रीवाचक तथ्यों में अन्तर्हित महिमा नारी के सामान्य गुणों की ओर संकेत करती हैं। अतः अतिशय साक्ष्यों के आधार पर ही सेवापरायणता एवं नारी चरित्रशीलता विनम्रता आदि गुण होते हैं। इन्हीं गुणों के आधार पर नारी स्वतः ही समाज में पूजनीया, प्रतिष्ठा को धारण किये है।[8]

सम्पूर्ण संसार या समाज को एकसूत्र में बाँधने वाली 'पुरन्ध्री' नाम से विदित है उसके बिना लोकयात्रा सम्भव नहीं है।

क्योंकि दूर देश से आने के बाद भी एक परिवार को दूसरे परिवार में विवाह संस्कार के बाद स्वाभिक सम्बन्ध स्थापित कराती है अर्थात् यही पर "वसुधैव कुटुम्बकं"[10] की स्थापना भी एक स्त्री के द्वारा सिद्ध हो जाता है।

"स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन" मनुस्मृति के इस तथ्य के द्वारा स्त्री को गृह लक्ष्मी पद से सम्मानित किया जाता है।

इस तथ्य से स्पष्ट होता है कि 'श्री' व स्त्री में अभेद सम्बन्ध है।

वंशपरम्परा एवं पितृऋण से मुक्ति लोक व्यवहार का प्रमुख साधन एवं साध्य हैं नारी।[11]

धार्मिक जीवन में सेवा-शुश्रूषा हव्यदान (देवता), कव्यदान (पितरों) यह सब भी नारी के अधीन हैं।[12] जिस कुल में बहन, कन्या, पत्नी, पुत्रवधू, माता आदि स्त्रियों का वस्त्रालंकारों स्वागतवचन आदि से सत्कार होता है, उस कुल में देवता निवास करते हैं तथा जिस कुल में स्त्रियों का समाज नहीं होता वहाँ समस्त धन वैभव यज्ञ तप धर्म निष्फल हो जाते है।[13] मनु महराज कहते हैं कि जिस परिवार में नारी दुःरिक्त रहती हैं वह परिवार शापित हुए के समान स्वतः ही जल्द विनाश को प्राप्त हो जाता है।

शिक्षा- वैदिक, साहित्य के अध्ययन से पुष्ट प्रमाण प्राप्त होते हैं कि सभी को शिक्षा का समान अधिकार प्राप्त था। ऋग्वेद (9.68.5) में पुत्र के समान पुत्री को शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा है अथर्व (11.3.15.18) में ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्, आश्वलायन श्रोतसूत्र (4.15.24) में समानं ब्रह्मचर्यम् कह कर कन्या शिक्षा की अनिवार्यता पर प्रकाश डाला गया है। विवाह न करना ही ब्रह्मचर्य नहीं है अपितु14 दक्षस्मृति एवं काशिका के अनुसार ब्रह्मचारी वह है जो संयमपूर्वक वेदाध्ययन करता रहे।

तैत्तरीय (2.3.10) के उपाख्यान से प्रामाणित होता है कि कन्यायें धार्मिक शिक्षा में रूचि रखती थीं।[15] वृहदारण्यकोपनिषद् (6.4.17) में विदुषी पुत्री की अभिलाषा व्यक्त की गयी है।[16]

मंत्र द्रष्टा ऋषियों की तरह घोषा, गोधा, विश्ववारा, अपाला, रोमशा, लोपामुद्रा प्रभृति आदि अनेक ऋषिकाओं का उल्लेख वर्णित है।

पाणिनीय अष्टाध्यायी में[17] उपाध्याया, आचार्या[18] जैसे शब्दों के प्रयोग से प्रतीत होता है कि वैदिक मंत्रोचारण स्त्रियों द्वारा भी होता था।

सक्षेपतः वैदिक समाज में स्त्रियों का भी उपनयन संस्कार[19] एवं वेदारंम्भ विहित था।

स्वतंत्रता- वैदिक काल में कन्याओं और युवतियों को हर क्षेत्र में अपना योगदान देने की छूट थी। वे हर सामाजिक सांस्कृतिक धार्मिक कार्यों में प्रतिभाग करती थी। ऋग्वेद[20] में ऊषा भी एक ऐसी कन्या के सदृश है जो अपने सुन्दरता पर अभिमान करती है। प्रत्येक कन्यायें अन्य कन्याओं के विवाह संस्कार में जाती थी। एवं अनेक प्रकार से शृङ्गार करती थी।[21]

अथर्ववेद संहिता से भी इस अनुमान की पुष्टि हो जाती है कि कन्या जो कन्या समन में मनोरम है, शीघ्र ही पति प्राप्त करे।

ऋग्वेद में वहुषः ज्ञात होता है कि युवाजन विवाह संस्कार के लिए वैवाहिक जीवन हेतु प्रणय निवेदन भी करते हैं।

वैदिक काल में युवक-युवती आपस में मिल-जुल सकते थे, जबकि कुछ स्मृतियों ने स्पष्टतः निषेध किया गया है। सर्वप्रथम गौतम[22] ने 'अस्वतन्त्रा धर्मे स्त्री' कह कर नारी जाति को धर्म कार्य से परतंत्र बताया। बसिष्ठ ने 'अस्वतन्त्रता धर्मे स्त्री' कह कर नारी को धार्मिक कार्यों में पराधीन बताया। अर्थात् वह पति के अधीन है।

सामान्यतः नारी को पुरुष के अधीन ही रखा गया है क्योंकि बचपन में पिता, यौवन में पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र ही उसका संरक्षक सेवक नियुक्त किया गया है।[23]

विवाह संस्कार एवं अधिकार- पूर्ववैदिक काल में विवाह की अवस्था को लेकर वेदों एवं स्मृतियों में उहापोह की स्थिति है। वेदों में कन्या के विवाहसंस्कार- **ब्रह्मचर्येण कन्या युवान् विन्दते पतिम्** यह उक्ति स्मृतियों[24] में रजोदर्शन (मासिक धर्म) से ही माता-पिता पुत्री के विवाह संस्कार का मत प्रतिपादित किया है। किन्ही-किन्ही प्रमाणों में विवाह का प्रयोजन सन्तानोत्पादन ही बताया गया है।25 आचार्यसुश्रुत ने वर-कन्या के विवाह की आयु क्रमशः 25-16 वर्ष बताया है।

पूर्ववैदिक काल में बाल विवाह का प्रमुख कारण विदेशी मुस्लिम आततायी के समय स्त्रियों को अपहरण एवं उनकी पवित्रता अखण्ड एवं बचाने हेतु किया जाता था, क्योंकि आततायी विदेशी विवाहित स्त्रियों के अपहरण में रूचि नहीं रखते थे अतः तत्कालीन परिस्थिति में नारी सुरक्षा एवं उनके शारीरिक पवित्रता हेतु बाल विवाह वरदान सिद्ध था।

मनुस्मृति में तीस वर्ष की अवस्था वाले पुरुष के विवाह संस्कार में द्वादश वर्षीय कन्या के विवाह की अनुमति दी गयी।[26] पति पत्नी की अवस्था में अधिक अन्तराल होने से उनमें असमञ्जस्य, अर्थात् स्त्री अपने युवावस्था के कारण कामभावना से परपुरुष के प्रति आकर्षण, सन्तान हीनता एवं यौवन अक्षुण्ण रहते ही विधवा होने की

सम्भावना रहती है। ऐसी स्थिति में पुरुषसत्ता प्रधान समाज में पति को देव तुल्य माना गया मनसा-वाचा, कर्मणा पति के अनुकूल रहने का विधान किया[27] रामचरित में पत्नी को पति में प्रेम एवं सेवा से सदा प्रसन्न करने का उल्लेख मिलता है-

धीरज धरम मित्र अरु नारी। आपद काल परिखि अहिँ चारि।
वृद्ध रोगवस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना।
ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना।
एकइ धर्म एक व्रत नेमा। कायँ वचन मन पति पद प्रेमा।।[28]

पति के विदेश चले जाने पर उसे स्वाभाविक आहार विहार से भी वंचित किया गया[29]

विधवा की दशा में तो मनु, वृहस्पति, वृद्धहारित प्रभृति शास्त्रकारों ने स्त्री की जो दिनचर्या निर्धारित की वह इतनी कठोर है कि उसके नियमानुसार जीवन जीने से देहत्याग अधिक श्रेष्ठ होता है।

'सती नारी' की प्रशंसा क्योंकि कुटुम्ब के लोगों को एक सामाजिक कलंक क्योंकि विधवा होने से अनैतिक आचरण का भय एवं दूसरी तरफ उसके सम्पत्ति की प्राप्ति का लोभ।

सामाजिक वर्जनाओं के बाद भी नारी की उसके पति की मृत्यु के बाद कुछ जैविकिय जरुरतें एवं मातृत्व में उसकी पुर्णता के लिए नारद, याज्ञवल्क्य आदि ने 'नियोग' विधि की अनुशंसा दी। मनु जी विधवा पुनर्विवाह का निषेध किन्तु पराशर ने विशिष्ट परिस्थितियों में स्त्री के पुनर्विवाह के स्वीकृति दी।[30]

अधिकार- ऋग्वेद में दम्पत्ती शब्द पुरातन से ही नवविवाहित वर-बधू (पति-पत्नि) के लिए द्विवचन में प्रयुक्त होता है विवाह संस्कार के समय ही स्वतः ही पति-पत्नि एक दूसरे को अधिकार प्रदान करते पत्नि विवाह संस्कार में सात वचन, पति पाँच वचन अपने सम्पूर्णजीवन में आदान-प्रदान करके उसका विधिवत पालन करते है। यज्ञाधिकार में भी पत्नि को पति के साथ रहने का प्रमाण मिलता है।[31]

यद्यपि पत्नि की स्वतंत्रता पर प्रतिबन्ध लगाया गया तथापि पति के साथ परिवार के पालन पोषण का अधिकार था। प्रोषित भर्तृका को एक निश्चित समय के इन्तजार के बाद पुनर्विवाह का अधिकार था। नियोग द्वारा भी वह पुत्र प्राप्त कर सकती थी। उसे सम्पत्ति का भी अधिकार था।[32]

कात्यायन ने भी मनु एवं याज्ञवल्क्य का पूर्ण समर्थन किया।[33] नारद ने पुत्र के अभाव में कन्या को रिक्थाधिकार इस आधार पर दिया है कि पुत्र के समान ही पिता के कुल चलाने वाली होती है।[34]

मनु ने छः प्रकार के विभाजन बतायें है स्त्रीधन के-

पहला विवाह संस्कार की अग्नि को साक्षी मानकर दिया गया धन दूसरा पिता के द्वारा पति गृह विदाई में कन्या के लिए दिया गया धन प्रेम सम्बन्ध में किसी माङ्गलिक पर्व पर पति द्वारा प्राप्त धन भातृदत्तधनं, मातृदत्त धन, पितृप्रदत्त धन आदि)[35]

पुत्र हीन, विधवा को मृत पति की सम्पत्ति का अधिकार प्राप्त होने का मत सर्वप्रथम याज्ञवल्क्य जी प्रदान करते हैं। याज्ञवल्क्य की व्यवस्था क्रम में सम्पत्ति पर क्रमशः- पत्नी, कन्या दौहित्र, माता-पिता, भाई, भतीजे, गोत्रज, बन्धु, शिष्य एवं सहपाठी का ही अधिकार होता है।[36] वृहस्पति के अनुसार पति से पहले मरने वाली पत्नी अपने पति के अग्निहोत्र को साथ ले जाती है, किन्तु विधवा होने पर सती पत्नि का ही सम्पत्ति का आधिकारी होता है।

पतिव्रता नारी की वन्दना करनी चाहिए यही सनातनशास्त्री में वर्णित है।

प्रतिष्ठा- वैदिक काल से ही सभी स्मृतियों, शास्त्रों में नारी की प्रतिष्ठा के विषय में स्वर्णिम युग रहा। वैदिक समाज में नारी पर्याप्त स्वतन्त्रता को प्राप्त किये थी, विधवा की स्थिति में बिना उसकी स्वीकृति से सती होने के लिए वाध्य नहीं किया जा सकता है।

प्राचीन समाज में नारी का स्थान वैसे ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है जैसे शरीर में 'नाड़ी' का है। जिस प्रकार किसी व्यक्ति के शरीर में नाड़ी (वात, कफ, पित्त) का सन्तुलन तीव्र या लघु होने पर वह व्यक्ति अस्वस्थ्य हो जाता है वैसे समाज एवं राष्ट्र का विनाश निश्चित होता है।[37]

नारी 'गृहिणी' या पुरन्ध्री रूप ही समाज की उन्नति का हेतु बनता है। नारी शीलवती, वात्सल्य, ममता, त्याग आदि मानवीय गुणों की साक्षात् मूर्ति है और माँ, पत्नि, पुत्री, बहन आदि अनेक रूपों में सम्बन्धों का केन्द्र बिन्दु। नारियों के सम्मान से देवताओं का भी आशीर्वाद प्राप्त होता है।

मार्कण्डेय पुराण में ज्ञान, बल, धन की अधिष्ठात्री देवी के रूप में क्रमशः सरस्वती, दुर्गा, लक्ष्मी को दुर्गासप्तशती में तीन महाशक्ति के रूप में परमेश्वर द्वारा प्राप्त माना गया है-[38]

एकैव शक्तिः परमेश्वरस्य भिन्नाश्चतुर्धा व्यवहारकाले।
समरे च दुर्गा प्रलये च काली, पुरुषेषु विष्णुर्भोगे भवानी।।

ब्रह्मवैवर्त पुराण मे जैसा कि मनुस्मृति में 16 संस्कारों का प्रतिपादन करके भारतीय संस्कृति को समृद्धि प्रदान किया ठीक वैसे ही इस पुराण में भारतीय संस्कृति में परमपूज्या 'नारी' को विभिन्न रूपों में प्राप्त होने के बाद भी माता संज्ञा के आधार पर 16 प्रकार की माता बतायी गयी हैं।[39]

स्तनदात्री गर्भधात्री भक्ष्यदात्री गुरुप्रिया।
अभीष्ट देवपत्नी च पितुः पत्नीच कन्यका।।
सगर्भजा या भगिनी पुत्रपत्नी प्रियाप्रसुः।
मातुर्माता पितुर्माता सोदरस्य प्रिया तथा।
मातुः पितुश्च भगिनी मातुलानी तथैव च।
जनानां वेदविहिता मातरः षोडश स्मृताः।। (गणेश खण्ड 15)

स्तनपिलाने वाली, गर्भाधारण करने वाली, भोजन देनेवाली, गुरुपत्नी, इष्ट देवता की पत्नी, पिता की पत्नी (विमाता), पितृकन्या (सौतेली) बहन, सहोदय बहिन, पुत्रवधु, सासु, नानी, दादी, भाई की पत्नी, मौसी, बुआ और मामी- वेदों में मनुष्यों के लिए ये सोलह प्रकार की माताएं बतलायी गयी हैं।

नारी स्वयं की प्रतिष्ठा स्वयं से स्थापित किया है प्राचीन काल से ही क्योंकि अगर हम महान् वीराङ्गना और गोंडवाना साम्राज्य की शासिका रानी दुर्गावती या फिर झांसी की वीराङ्गना रानी लक्ष्मीबाई की प्रतिष्ठा का कारण देखे तो स्वयं से अर्जित प्रतीत होती है।

रानी दुर्गावती ने राज्य एवं प्रजा के समृद्धि के लिए तत्कालीक हाथी, सोने के सिक्कों से टैक्स खत्म करायी, तालाबों, देवमन्दिरों का निर्माण करवायी उनके सम्मान में जबलपुर में दुर्गावती विश्वविद्यालय की स्थापना की गयी। उन्हें नारी सशक्तिकरण एवं राष्ट्रप्रेम की प्रतीक माना जाता है।[40]

निष्कर्ष- माता पृथिव्या मूर्तिः सहस्रं तु पितृन् माता गौरवेणातिरिच्यते, महि मातृसमो गुरुः मान्यताओं से निष्कर्षतः स्मृतियों में नारी निन्दा के साथ ही स्मृतिकारों को नारी विरोधी नहीं कहा जा सकता क्योंकि पुत्री एवं माता के रूप में नारी की सर्वत्र प्रशंसा की गयी है- नारी का स्वरूप कभी रमणी कभी युवती रूप में होता रहा जो विवादास्पद रहा। कभी उसे गृहलक्ष्मी, कभी वासना की साक्षात् मूर्ति, तो कभी करुणा ममता एवं साक्षात् देवी का स्वरूप, शील नारी का सबसे बड़ा आभूषण है, 'पुरुधी' बनकर वह समाज को एक सूत्र में बाँधती है। अतः नारी आदर्श समाज के निर्माण की दृष्टि से नारी के चरित्र, सम्मान एवं प्रतिष्ठा की स्थापना होनी चाहिए।

उद्देश्य यह है कि स्मृतिकार वैदिक समाज की नारी को ही आदर्श मानते हैं, एवं मर्यादा बनाये रखने हेतु कभी-कभी निन्दा भी यदि ऐसा न होता तो 'मातृवत् परदारेषु' की दृष्टि अपनाने का विधान ही न होता।

भारतीय संस्कृति में स्त्री का मातृरूप ही उसकी सर्वप्रधानता का सूचक है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पाश्चात्य संस्कृति की दृष्टि से रमणीय रूप नही, जो इन्द्रिय भोगों की ओर आकर्षित हो, क्योंकि भारतीय संस्कृति में तो नारी भोग नहीं अपितु योग का साधन है।

इस प्रकार वैदिक एवं स्मार्त अवधारणाओं का अन्तर्विरोध प्रातिभासिक है यथार्थ नहीं और हाँ रही बीच-बीच में नारी अपितु उसके मातृरूप की प्रतिष्ठा स्थापित करना, सांस्कृतिक मूल्यों को सुरक्षित रखना है।

सन्दर्भ-सूची

1. नृनरयोर्वृद्धिश्च इति शाङ्र्गरवादि (4/1/73) गणे पाठान् ङीन्
(अष्टाध्यायी)
2. 'युष' सौत्रः सेवायाम्। इति प्रत्ययान्तः (उणादि1/197) योषित्, अच् प्रत्यायान्तः (3/3/124) घञ् प्रत्यायान्तः (3/3/19) वा 'योषा' शब्दः
(अष्टाध्यायी)
3. वमति स्नेहमिति वामा। यद्वा वामः कामोऽस्त्यस्याः 'वनिता' जातरागस्त्री स्त्रियोस्त्री त्रिषु याचते। सेविते (इति मेदिनी 65/150-51)
4. प्रतीपं द्रष्टुं शीलस्याः। अपाङ्गनिरीक्षणात्।
वहति उध्यते वेति बधूः 'वहो धश्च' उणा. 1/83)
5. अल्पं वलमस्याः। अल्पर्थि नञ्।
6. सीम्नोऽन्तः सीमन्तः। सीमन्तोऽस्त्यस्याः। महति मह्यते वा। मह् पूजायाम्+ इलच् (उणा. 1/54) + महिला।
7. यत्र नार्यस्तु पुज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यर्त्रेतास्तु न पुज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।(मनु. 3.56)
8. पुरं स्वजनसहितं कुलं धारयति एक सूत्रे निवध्नाति स्वयोग्यतयेति।
9. नाना नारीं निष्फला लोकयात्रा। (गणरत्नमहोदधि)
10. उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम्।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम्।। (मनु. 9.27. बृहत्पराशर 6.71)
11. मनु. 9.28
12. मनु. 3.56, बृहत्पराशस्मृति 6.44.45
13. ऋक्. 3.55.16, यजु. 8.1, अथर्व 9.65, 16.37
14. ब्रह्म वेदस्तदध्ययनार्थं व्रतं तदपि ब्रह्म, तच्चरतीति ब्रह्मचारी।
(काशिका 8.3.86)
15. अथ य उच्छेद दुहिता में पण्डिता जायेत सर्वमायुरियादिति तिलौदनं पाचयित्वा सर्विषमन्तमश्नीयातामीश्वेरी जनयितवै
(वृहदारण्यकोपनिषद्- 6.4.17)
16. अष्टाध्यायी- 3.3.21
17. उपत्याधीमतेऽस्या उपाध्याया- महाभाष्य
18. पुराकल्पेत् नारीणां मौंजीबन्धनमिष्यते। (गौतम स्मृति)
19. ऋक्. 1.123.10, ऋक्. 4.58.6
20. अथर्व. 6.60.2
21. समग्रुवो न समनेष्वजन्- ऋक्. 7.25
22. गौतमस्मृति 1.8
23. पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्राः न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।। (स्मृति) ऋ. 11.5.18
24. भारतीय संस्कृति डॉ. वीरेन्द्रकुमार सिंह
25. मनु स्मृति, 9.94
26-28. एकइ धर्म एक व्रत नेमा। कायँ वचन मन पति पद प्रेमा
(रामचरितमानस)
29-30. विवर्णा दीनवदना देहसंस्कारवर्जिता।
पतिव्रता निराहारा शोष्यते प्रोषिते पतौ।। (व्यास स्मृ. 2.52)
क्रीडां शरीर संस्कारं समाजोत्सवदर्शनम्।
हास्यं परगृहे यानं त्यजेत् प्रोषिहभर्तृका (याज्ञ. 1.84)
31. दम्पती समनसा सुनुतः- ऋ. 8.315
अञ्जजन्नि दम्पत्ति समनसा- ऋ. 5.3.1
32. मनु. 11.36
33. पर उद्धृत कन्यकानां त्वदत्तानां चतुर्थो भाग इष्यते
(कात्यायन, दायभाग)
34. वृहस्पति- दायभाग
35. मनुस्मृति 9.194
36. धर्मशास्त्र का इतिहास- अर्जुन चौबे भाग-3
37. याज्ञ. 1.135-136
38. मार्कण्डेय पुराण, दुर्गासप्तशती
39. ब्रह्मवैवर्त पुराण (गणेशखण्ड)